शिक्षा के अधिकार का क्रियान्वयन
एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

सुधीर कुमार शर्मा*
श्याम सिंह सत्यार्थी**

वर्तमान की आवश्यकता शिक्षा के त्वरित तथा दूरगामी प्रभावों की व्यापकता का लगातार अध्ययन तथा पर्यवेक्षण है। निश्चित रूप से यह तय करना सरकार का काम है कि देश भर के निरक्षर लोगों की तादाद में और बढोत्तरी न हो। यह समझना किसी भी बुद्धिजीवी के लिए दु:श्कर प्रतीक नहीं होता कि देश और समाज में वास्तविक बदलाव मात्र विधेयक बनाने से नहीं लाये जा सकते बल्कि इसके लिए सार्थक क्रियान्वयन का होना प्रथम अनिवार्यता है। इस विधयेक के लिए सबसे बड़ी चुनौती जनसामान्य में शिक्षा के प्रति समझ पैदा करने की है। साथ ही इस समझ को साकार कर पाने की उनमें ललक भी होनी चाहिए। जनसामान्य को यह समझाना होगा कि उनके शिक्षा के बुनियादी अधिकार के तहत यदि उन्हें किसी भी स्कूल में दाखिला लेकर पढ़ने का हक है तो उन्हें स्कूल के दायरे में पहुँचाकर उनकी पढ़ाई सुनिश्चित करना सरकार की जिम्मेदारी है।

हर पीढ़ी के बच्चे देश के लिए ऐसे बीज होते है जिनमें भविष्य में फलों से भरे वृक्ष बनने की संभावनाएँ छिपी होती हैं। इन बीजों की देखभाल और पोषण इस तरह से हो, ताकि देश और समाज का भविष्य उन्नत, उज्जवल और प्रभावकारी हो। इस भविष्यगामी महत् कार्य को पूर्ण करने की समस्त जिम्मेदारी प्रभावी शिक्षा के द्वारा ही सम्पन्न हो सकती है। महात्मा गाँधी ने अपनी पुस्तक 'हिन्द स्वराज' में कहा था कि—

> *''मैं भारत के लिए नि:शुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के सिद्धांत को दृढ़तापूर्वक मानता हूँ। मैं यह भी मानता हूँ कि इस लक्ष्य*

**प्रवक्ता*, शिक्षक शिक्षा संकाय, श्रीमती गेंदादेवी महाविद्यालय, कासगंज, काँशीराम नगर, उत्तर प्रदेश
***प्रवक्ता*, शिक्षक शिक्षा संकाय, श्रीमती गेंदादेवी महाविद्यालय, कासगंज, काँशीराम नगर, उत्तर प्रदेश

को पाने का सिर्फ यही एक रास्ता है, कि हम अपने बच्चों को कोई उपयोगी उद्योग सिखाएँ और उसके द्वारा उसकी शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियों का विकास करें"।

संयोगवश वर्ष–2010 'हिन्द स्वराज' का शताब्दी वर्ष था। इसके लेखक गाँधी जी मात्र सत्याग्रह आन्दोलनकारी ही नहीं थे, बल्कि नि:शुल्क और बुनियादी शिक्षा का विचार देने वाले शिक्षाशास्त्री भी थे, साथ ही एक सुखद संयोग यह भी है कि केंद्र सरकार ने सन 2010 में नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा का बाल विधेयक संसद से पारित करा लिया है। शिक्षा को सभी बच्चों का मौलिक अधिकार बनाने वाला ऐतिहासिक कानून 1 अप्रैल 2010 से सम्पूर्ण भारत में लागू हो गया है। इस कानून के तहत 6 से 14 वर्ष के आयु वर्ग के सभी बालकों को अनिवार्य और नि:शुल्क शिक्षा उपलब्ध करायी जायेगी। यह कानून इस आयु वर्ग के सभी बच्चों को स्कूल पहुँचाने के कार्य को सुनिश्चित करने के लिए स्थानीय व राज्य सरकारों पर बाध्यकारी होगा और यदि इसमें कहीं कोई कोताही हो तो बच्चों की तरफ से अदालत से भी यह अधिकार माँगा जा सकेगा।

'शिक्षा का अधिकार' के इस विधेयक में प्रथम दृष्टव्य चार मुख्य बातें सामने आती हैं। प्रथम—'सभी को शिक्षा' निश्चित ही इस बात पर कोई संदेह नहीं किया जा सकता कि यदि इसका क्रियान्वयन हो गया तो इसमें भारत का भविष्य बदलने की शक्ति है क्योंकि इससे लड़के व लड़कियों की शिक्षा के मध्य फैले अन्तराल को समाप्त किया जा सकेगा साथ ही शहरी व ग्रामीण बालकों के मध्य बढ़ती खाई को भी पाटा जा सकेगा। द्वितीय—इस विधेयक द्वारा बालकों के लिए पड़ौस के स्कूल की अवधारणा को पुनर्जीवित किया गया है। यद्यपि इससे पूर्व भी कोठारी आयोग और बाद में राममूर्ति आयोग ने भी इस अवधारणा पर बल दिया था, परन्तु यह अवधारणा आज भी अपने जर्जर स्वरूप में हमारे चारों ओर बिखरी पड़ी है। तृतीय—इस विधेयक द्वारा यह प्रावधान प्रस्तुत किया गया है कि कोई भी निजी विद्यालय चाहे वह किसी भी स्तर तक अभिजात्य क्यों न हो, उसे अपने आस–पास रहने वाले गरीब बालकों के लिए 25% सीटें रिजर्व रखनी होंगी। लेकिन जिस तरह की हमारी पूँजीवादी व्यवस्था है उसमें इन गरीब बालकों को वातानुकूलित कक्षाओं में बैठकर शिक्षा पाने का सपना साकार हो सकेगा यह मृग–मरीचिका के समान प्रतीत हो रहा है क्योंकि एक ओर जहाँ गरीब बालकों का ऐसे अभिजात्य विद्यालयों मे प्रवेश मिलना भी दु:श्कर है दूसरी ओर यदि ये बालक इस विधेयक के बल पर प्रवेश पानें में सफल भी रहते हैं तब उस विद्यालयी वातावरण में इन बालकों के समायोजन और व्यक्तित्व विकास की क्या स्थिति होगी इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। चतुर्थ—एक अन्य महत्वपूर्ण प्रावधान जो इस विधेयक द्वारा हमारे सम्मुख उपस्थित होता है वह है आठवीं कक्षा तक के बालकों को अनुत्तीर्ण न करने और बालकों को हर वर्ष परीक्षा देने से मुक्ति देने का प्रावधान।

इस कानून के पारित होने के पूर्व इसे लगभग आठ वर्षों का वनवास झेलना पड़ा। काफी प्रतीक्षा के बाद शिक्षा के अधिकार का विधेयक अंतत: 1 अप्रैल 2010 को लागू हुआ जबकि वर्ष 2002 में

इस संबंध में संविधान संशोधन की प्रक्रिया लागू हुई और अधिनियम 2008 में पारित हुआ। 6–14 वर्ष के बच्चों को अनिवार्य और मुफ़्त शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए संविधान में 86वाँ संशोधन कर सन् 2002 में राज्य स्तर पर इसकी जिम्मेदारी डाली गयी थी, परंतु तब से लेकर आज तक न तो राष्ट्रीय मीडिया, न नेतागण और न ही सामान्य जनों ने इसे विशेष बनाने में कोई विशेष प्रयत्न किया। आखिर राष्ट्रीय महत्व के इस विधेयक पर सब ओर चुप्पी और बेरुखी का क्या औचित्य माना जाय? जिस देश की साक्षरता दर लगभग 65% हो और लगभग 30 करोड़ की आबादी निरक्षर हो उस देश के लिए संसद में पारित बिल ऐतिहासिक महत्व तथा राष्ट्रीय गर्व का हो जाता है। अब प्रश्न यह उठता है कि जब शिक्षा देश की प्राथमिकता है और यह विधेयक राष्ट्रीय गर्व का विषय है तब इस विधेयक के लागू होने की प्रक्रिया में इतना समय क्यों लगा?

देश में 6 से 14 वर्ष की आयु वर्ग के बालकों की कुल सँख्या अनुमानत: 22 करोड़ है और इस आयु वर्ग के 4.6 प्रतिशत बालक (लगभग 92 लाख) अभी भी विद्यालय की चौखट तक नहीं पहुँचते हैं। माना जा रहा है कि इस कानून के लागू हो जाने से विद्यालय न जाने वाले औसतन एक करोड़ बच्चों की तकदीर बदलने की शुरुआत हो जाएगी। यह बात सुनने में बहुत आश्वासन देती है, परंतु प्रश्न यह है कि क्या सिर्फ विधेयक बन जाने से देशभर के बालकों को मुफ़्त और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का रास्ता सफलतापूर्वक तय हो जाएगा?

यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि आजादी के लगभग 63 वर्ष बाद भी यह अनिश्चितता बनी हुई है कि देश में सभी को शिक्षा मिल पाएगी अथवा नहीं? आखिर कब तक हम यह दोहराते रहेंगें कि अँग्रेजों ने अपनी आवश्यकतानुसार तथा उपनिवेशवादी रणनीति के तहत जो शिक्षा व्यवस्था यहाँ लागू की थी, वह हमें हानि पहुँचा रही है। वर्तमान समय में शिक्षा के अधिकार का विधेयक देशभर में जिस तरह से चर्चा में है उससे तो यह स्पष्ट नज़र आ रहा है कि इतनी लम्बी प्रतीक्षा के उपरांत इसके बारे में जो उत्साह और तैयारी का वातावरण बनना था वह नहीं बना है। इतना जरुर तय है कि इस विधेयक के परिप्रेक्ष्य में कुछ नए स्कूल खुल जायेंगें, कुछ नए अध्यापक नियुक्त हो जायेंगें तथा थोड़े से मानदेय पर कार्य कर रहे शिक्षामित्र जैसे शिक्षाकर्मी नियमित होने का सपना देख सकेंगें।

इस विधेयक के लागू होने के बाद देश भर में शिक्षकों का अभाव एक बड़ी समस्या के रूप में हमारे सामने आ खड़ा होता है।

> *"नये कानून के लागू होने के बाद बड़े स्तर पर सेवाकालीन तथा नवीन शिक्षकों के प्रशिक्षण की आवश्यकता है। नेशनल करिकुलम फ्रेमवर्क (NCF) 2005 तथा NCERT ने देशभर में शिक्षकों के रिक्त हो रहे पदों और अध्यापकों की आवश्यकता के अनुसार जो आँकड़ा तैयार किया है उसके अनुसार 2009 से 2011 के बीच प्राथमिक स्तर से लगभग 11 लाख 99 हज़ार शिक्षक तथा माध्यमिक स्तर से 5 लाख 83 हजार शिक्षक सेवानिवृत हो जायेंगें"।*[1]

[1]कुलदीप, *अमर उजाला,* आगरा 28 जून, 2009

वैसे तो स्कूली शिक्षकों के खाली पदों के मामले में केंद्र व राज्य दोनों ही सरकारें जिम्मेदार हैं, लेकिन केंद्र की नज़र में सबसे अधिक गड़बड़ उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखण्ड और पश्चिम बंगाल जैसे राज्यों में है। देश भर के सरकारी स्कूलों के 46.2 लाख शिक्षकों के स्वीकृत पदों में लगभग 8 लाख (लगभग 17%) पद खाली है।

"केवल उत्तर प्रदेश के परिप्रेक्ष्य में इसे देखा जाए तो वर्तमान में इस अधिनियम के लागू होने पर प्रदेश के प्राथमिक स्कूलों में तत्कालिक तौर पर 3.25 लाख शिक्षकों की आवश्यकता है तथा उच्च प्राथमिक स्कूलों के लिए 65 हजार शिक्षकों की दरकार है। उच्च प्राथमिक स्कूलों में कला, स्वास्थ्य शिक्षा और कार्य शिक्षा (Work Education) जैसे विषयों के लिए 45 हजार अंशकालिक शिक्षकों की आवश्यकता है। शिक्षा का अधिकार अधिनियम की धारा-6 पर अमल करने के लिए प्रदेश में तीन वर्ष के अंदर 7 हजार नये विद्यालय स्थापित करने होंगे। इन विद्यालयों के लिए लगभग 16 हजार और नये शिक्षकों की आवश्यकता होगी"।[2]

हमारे देश में संचालित स्कूली तंत्र दुनियाँ का दूसरा सबसे बड़ा स्कूली तंत्र है परंतु यह शिक्षकों की कमी से बुरी तरह जूझ रहा है। सर्व शिक्षा अभियान के अंतर्गत 2.5 लाख से अधिक पद रिक्त पड़े हैं। उसकी जबाब देही राज्यों के साथ केंद्र सरकार भी है। लेकिन शिक्षकों के बाकी 5 लाख 38 हजार से अधिक पद राज्य सरकारों के अपने कोटे में खाली पड़े हैं। हालांकि इन बदतर स्थितियों में भी देश के तीन राज्य केरल, मेघालय और नागालैंड ऐसे हैं जहाँ स्कूली शिक्षक का एक भी पद रिक्त नहीं है। देश के प्राथमिक शिक्षकों की आवश्यकता वाले प्रमुख 6 राज्यों का तालिकाबद्ध ब्यौरा निम्न प्रकार है—

स्कूली शिक्षकों के राज्यवार स्वीकृत, कार्यरत व रिक्त पदों की स्थिति—

	स्वीकृत पद			*कार्यरत पद*			*खाली पड़े पद*		
राज्य	*राज्य शिक्षक*	*सर्वशिक्षा अभियान*	***योग***	*राज्य शिक्षक*	*सर्वशिक्षा अभियान*	***योग***	*राज्य शिक्षक शिक्षक*	*सर्वशिक्षा अभियान*	***योग***
उ.प्र.	335870	276217	**612087**	177629	249481	**447110**	138241	26736	**164977**
बिहार	205965	260841	**466806**	149561	160145	**309706**	56404	100696	**157100**
झारखण्ड	68867	94605	**163472**	48262	83459	**131721**	20605	11146	**31751**
प. बंगाल	317803	107219	**425022**	274127	61605	**335732**	43676	45614	**89290**
पंजाब	80981	4840	**85831**	66882	4813	**71695**	14109	27	**14136**
हरियाणा	77639	8948	**86587**	51773	8936	**60709**	25866	12	**25878**

(नोट–तालिका केंद्र सरकार के पास उपलब्ध आंकड़ो पर आधारित) द्वारा–राजकेश्वर सिंह, नई दिल्ली, दैनिक जागरण, आगरा, 17 जून 2010

[2]राजीव दीक्षित, लखनऊ, *दैनिक जागरण*, आगरा, 12 अप्रैल 2010

प्रस्तुत आँकड़ों से स्पष्ट है कि उ.प्र. जैसे बड़े राज्यों में शिक्षकों की एक बड़ी सँख्या आवश्यकता के रूप में सामने आती है। यदि शिक्षकों के इस अभाव को पूरा करने का प्रयास किया भी जाए तब भी कोई सार्थक हल नहीं निकलता, क्योंकि इन अध्यापकों को तैयार करने के लिए उत्तर प्रदेश के 70 जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थानों में स्वीकृत शिक्षक पदों के सापेक्ष लगभग 60% पद रिक्त चल रहे हैं, तथा प्रदेश के इन प्रशिक्षण संस्थानों में प्रत्येक वर्ष मात्र 10650 शिक्षकों को ही बी.टी.सी. प्रशिक्षण देने की व्यवस्था है वहीं दूसरी ओर हर वर्ष बेसिक शिक्षा विभाग से सेवानिवृत होने वाले शिक्षकों की सँख्या 12 से 14 हजार के मध्य है। यद्यपि उच्च न्यायालय के आदेशानुसार प्रदेश भर में 47 निजी विद्यालयों को बी.टी.सी. की 50 सीटों के लिए मान्यता प्रदान की गयी है और 150 कॉलेज अभी भी मान्यता के लिए प्रतीक्षारत हैं। यदि इन सभी कॉलेजों को मान्यता दे भी दी जाए, तब भी इतनी बड़ी सँख्या में प्रशिक्षित शिक्षकों की व्यवस्था करना आसान सिद्ध नहीं होगा।

बच्चों के लिए नि:शुल्क और अनिवार्य 'शिक्षा का अधिकार' के विधेयक के समक्ष जो अगली समस्या मुँह खोले खड़ी है वह यह है कि इस अधिनियम को अमल में लाने के लिए वित्तीय अनुमानों के बारे में केंद्र सरकार के महकमों और अन्य संस्थाओं के बीच में सर्वसम्मति नहीं है।

> *''केंद्र सरकार द्वारा गठित 13वें वित्त आयोग ने अपनी रिपोर्ट में बताया है कि* 'मानव संसाधन विकास मंत्रालय' *ने 'शिक्षा का अधिकार' अधिनियम पर 2010-15 की अवधि के लिए 173946 करोड़ रुपये की जरुरत का अनुमान लगाया है वहीं दूसरी ओर* 'केंद्रीय योजना आयोग' *ने अपनी 10 नवंबर, 2009 की टिप्पणी में इस पर 144871 करोड़ रुपये खर्च होने का अनुमान लगाया है। जबकि* 'वित्त मंत्रालय' *ने इस विषय में कोई वित्तीय अनुमान उपलब्ध ही नहीं कराया''।*[3]

इन परिस्थितियों में जबकि इस अधिनियम को क्रियांवित करने के लिए जिस धनराशि की आवश्यकता होने वाली है, उस पर ही जब सरकारी संस्थाएँ एकमत नहीं हैं तब इसके क्रियान्वयन में होने वाली आर्थिक खींचतान का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। यह एक और विचारणीय प्रश्न होगा कि विद्यालयों के लिए स्वीकृत धन का कितना भाग विद्यालयों तक सही सलामत पहुँच पाता है। इसके बाद भी यह समस्या खत्म होने का नाम नहीं लेती क्योंकि अगली समस्या इस खर्चे को लेकर राज्यों एवं केंद्र सरकार के मध्य बँटवारे की है, जहाँ अधिकाँश राज्य इस विधेयक के क्रियांवित होने पर व्यय की जाने वाली राशि के लिए केंद्र सरकार को निहार रहे हैं।

शिक्षा के अधिकार के लिए अमलीकरण के लिए जरुरी संसाधनों के खर्च को लेकर उत्तर प्रदेश सरकार एवं केंद्र सरकार के मध्य गत वर्ष से ही तनाव की स्थिति है।

> *''उत्तर प्रदेश की वर्तमान मुख्यमंत्री मायावती जी ने वर्तमान प्रधान मंत्री श्री मनमोहन सिंह को पत्र लिखकर स्पष्ट किया है कि यदि केंद्र शिक्षा के अधिकार अधिनियम को लेकर*

[3]राजीव दीक्षित, लखनऊ, *दैनिक जागरण*, आगरा, 26 अप्रैल 2010

वास्तव में गम्भीर है तो राज्य में वह इस कानून के लागू होने पर आने वाला पूरा खर्च खुद वहन करे। उत्तर प्रदेश *राज्य सरकार के अनुसार इस अधिनियम के लागू करने पर राज्य को अगले 5 वर्षों में लगभग 18000 करोड़ रुपये की आवश्यकता होगी, इसमें से 45% (लगभग 8000 करोड़) रुपये की व्यवस्था करने की जिम्मेदारी राज्य सरकार पर डाली गयी है, प्रदेश की मौजूदा आर्थिक स्थिति को देखते हुए यह भारी भरकम खर्च उठा पाना राज्य के लिए संभव नहीं है।"*[4]

''वर्तमान वित्तीय वर्ष में केंद्र व राज्य के बीच सर्व शिक्षा अभियान में खर्च का बंटवारा 55 : 45 के अनुपात पर आ गया है और अगले वित्तीय वर्ष में इसको 50 : 50 होना है लेकिन अनिवार्य शिक्षा अधिकार विधेयक के अमल में कई नवीन चुनौतियों के मद्देनज़र सर्व शिक्षा अभियान के तहत बजट में बँटवारे को सरकार 65 : 35 करना चाहती है। यहाँ ध्यान देने योग्य है कि दसवीं पंचवर्षीय योजना में केंद्र व राज्यों के मध्य खर्च का बँटवारा 75 : 25 का था। 11वीं योजना में इसे 50 : 50 किया जाना था जो राज्यों के कड़े विरोध के चलते न हो सका बल्कि उसे चरणबद्ध तरीके से 65 : 35, 55 : 45 और 2011-2012 में 50 : 50 करनें का रास्ता निकाला गया"।[5]

यहाँ यह तथ्य भी अवश्यम्भावी है कि बच्चों को नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा के कानून पर अमल भी सर्व शिक्षा अभियान की रोशनी में ही होना है जबकि आवश्यकता एवं साक्षरता दर को देखते हुए शैक्षिक एवं सामाजिक दृष्टि से पिछड़े उत्तर प्रदेश, झारखण्ड, बिहार, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश जैसे राज्य शिक्षा के अधिकार के क्रियान्वयन पर आने वाले सम्पूर्ण खर्च की जिम्मेंदारी केंद्र को सौंपना चाहते हैं।

एक और बड़ी समस्या शिक्षा के अधिकार के क्रियांवयन में बालकों के विद्यालय और निरंतर शिक्षा से जुड़े रहने की है। सरकारी आँकडों के अनुसार 2008-2009 में पूरे देश में प्राइमरी शिक्षा में 1 करोड़ 34 लाख बच्चों ने प्रवेश लिया परंतु कक्षा 6 से 8 के बीच मात्र 53 लाख बच्चे ही पहुँच सके। अपव्यय एवं अवरोधन की इस देशव्यापी प्रबल समस्या से निपटने के लिए किये जाने वाले प्रयास कितने कारगर साबित होंगे यह आने वाला समय बताएगा क्योंकि वर्तमान स्थिति के अनुसार कक्षा 5 के बाद लगभग आधे बच्चे स्कूलों से बाहर हो जाते हैं। ग्रामीण अँचल में प्राथमिक शिक्षा की स्थितियों पर संस्था **'प्रथम'** द्वारा किये गए वार्षिक सर्वे की रिपोर्ट **'एनुअल स्टेट्स ऑफ़ एजुकेशनल रिपोर्ट-2008'** के अनुसार उत्तर प्रदेश के 16 वर्ष से अधिक आयु के 19.8% लड़के तथा 16.6% लड़कियाँ तथा 16 वर्ष आयु वर्ग के 6.8% लड़के एवं 10.2% लड़कियाँ स्कूल नहीं जाती हैं। इस विषय में उत्तर प्रदेश के कुछ प्रमुख जिलों के आँकड़े इस प्रकार हैं—

[4]'शिक्षा के अधिकार का पूरा खर्च दे केंद्र', *दैनिक जागरण*, आगरा, 04 अप्रैल 2010

[5]'फिर होगा स्कूली शिक्षा पर खर्च का बंटवारा' राजकेश्वर सिंह, नई दिल्ली, *अमर उजाला*, आगरा, 03 अप्रैल 2010

क्रमांक	*जिला*	*विद्यालय न जाने वाले बच्चे (% में)*
1	बहराइच	16.5
2	लखीमपुर खीरी	13.5
3	शाहजहाँपुर	12.9
4	संत कबीर नगर	12.3
5	बाराबंकी	10.3
6	आगरा	8.5
7	मुरादाबाद	7.5
8	कानपुर	5.6
9	मेरठ	5.4
10	बरेली	5.1

(नोट–द्वारा संजीव मिश्र, कानपुर–दैनिक जागरण 25 अगस्त 2009)

नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा विधेयक के प्रमुख ध्येय 'सबको शिक्षा' के अंतर्गत एक और समस्या बालिकाओं की शिक्षा को लेकर है मुख्य रूप से यह समस्या देश में बालिकाओं की शिक्षा और उनके सामाजिक परिवेश को लेकर संकुचित मानसिकता की है। कई स्थानों पर अभिभावकों की स्थिति बालिकाओं को बालकों के साथ सह शिक्षा लेने से रोकती है, तो कई बार विद्यालयों के घर से दूर होने की स्थिति में बालकों की अपेक्षा बालिकाओं की शिक्षा पर स्वत: प्रतिबंध लग जाता है। सामान्य रूप से बालक और बालिकाओं की शिक्षा के लिए अभिभावकों की मानसिक विषमता भी लड़कों की अपेक्षा लड़कियों की शिक्षा पर नकारात्मक प्रभाव डालती है। कई बार यह भी देखने में सामने आता है कि अभिभावक सामान्य से तनिक भी जटिल परिस्थिति होने पर लड़कियों को स्कूल भेजने से कतराते हैं। इस विधेयक के द्वारा सरकार ऐसे अभिभावकों की मानसिकता बदलने के लिए क्या प्रयास करने वाली है, यह अभी तक स्पष्ट नहीं है।

शिक्षा के सार्वजनीकरण में जहाँ एक ओर शिक्षकों का अभाव इस विधेयक के फलीभूत होने और व्यावहारिक रूप से लक्ष्य प्राप्त करने में संदेह उत्पन्न करता है, वहीं इसका एक और पक्ष यह भी है कि प्राथमिक शिक्षा के लिए उपलब्ध शिक्षक दूर दराज के क्षेत्रों में नियुक्ति एवं शिक्षण कार्य को लेकर उदासीनता अपनाए हुए हैं। यदि यह मान भी लिया जाए कि इस विधेयक द्वारा शिक्षा अगले 3 वर्षों में सभी बालकों की पहुँच में होगी और बालकों के गाँव की दहलीज पर स्कूल होगा ताकि बालकों को शिक्षा ग्रहण करने के लिए कहीं दूर–दराज नहीं जाना होगा, तब इन दूर–दराज के ग्रामीण विद्यालयों में अध्यापकों की उपस्थिति कैसे सुनिश्चित मान ली जाए। यदि शिक्षक दूर–दराज के ग्रामीण एवं दुर्गम इलाकों में नियुक्ति ले भी लेते हैं तब यह तथ्य किससे छिपा है कि इन दुर्गम क्षेत्रों में प्रतिदिन जाकर शिक्षण कार्य करने में उसकी रुचि कितनी क्षीण है। शिक्षा से संबंधित अनेकों जाँच कमेंटियाँ इस बात की ओर कई बार इंगित कर चुकी हैं कि ये ग्रामीण क्षेत्र के विद्यालय शहरों से नियुक्ति पाये उन हजारों शिक्षकों के लिए सिर्फ मासिक वेतन पाने का माध्यम भर है। सामान्य रूप से यह शिक्षक इन विद्यालयों में शिक्षण कार्य करना तो दूर विद्यालयों में प्रतिदिन जाना भी नहीं चाहते। यह स्थिति तब और जटिल हो जाती है जब इन ग्रामीण क्षेत्रों में महिला शिक्षक की नियुक्ति हो जाए। यह भारत के बेहिसाब ग्रामीण विद्यालयों की सच्चाई है।

अनिवार्य शिक्षा विधेयक की अगली व्यावहारिक समस्या निजी विद्यालय एवं उन कुछ विद्यालयों

में जो अभिजात्य वर्ग के विद्यार्थियों के लिए खोले जाते हैं, में आस-पडौस के 25% गरीब बालकों को प्रवेश देने की है। यद्यपि समान स्कूल व्यवस्था की अवधारणा बालकों को संविधान में निहित बराबरी का अवसर दिलाने की मूल भावना को साकार रूप देने में सक्षम है इसके बावजूद इसके व्यावहारिक प्रयोग की सफलता पर संदेह है। आस-पड़ोस के गरीब बालक के नाम से पुकारे जाने वाले यह वे बच्चे हैं जो पब्लिक स्कूलों में जाने का सपना तक नहीं देख पाते। इन पब्लिक स्कूलों को सरकार 25% फीस सरकारी खजाने से देगी। इसका सीधा अर्थ शिक्षा में व्यावसायीकरण को बढ़ावा दिये जाने से भी लिया जा सकता है क्योंकि इससे सरकारी स्कूलों की अनदेखी बढ़ेगी और नये निजी स्कूल खोलने की प्रवृत्ति को बल मिलेगा दूसरी ओर निजी स्कूल भी अनिवार्य शिक्षा का अधिकार में भागीदारी करने में अभी तक उदासीन रवैया अपनाये हुए हैं और इसके विरोध में अपने स्वर मुखर कर रहे हैं। यहाँ तक कि इस अधिनियम की वैधानिकता को ही निजी स्कूलों ने सुप्रीम कोर्ट में चुनौती दे दी है। इस अधिनियम को लेकर निजी स्कूलों की मुख्य समस्याएँ आरक्षण को लेकर तथा बालकों को उम्र के हिसाब से उचित कक्षा में प्रवेश को लेकर हैं। इनका मानना है कि इस विधेयक के अनुसार यदि कोई बालक 13 वर्ष की आयु में प्रवेश लेने आये, तब उसे कक्षा 7 में प्रवेश मिलना चाहिए। इससे पूर्व की कक्षाओं की शिक्षा ग्रहण करने के अभाव में यह कैसे सम्भव है कि उसे सीधे कक्षा 7 में प्रवेश दिया जाये। निजी विद्यालयों का यह भी मानना है कि जिन क्षेत्रों में अभी तक सरकारी विद्यालय नहीं हैं या अगले कुछ वर्षों में स्थापित होने वाले हैं वहाँ सरकार अपनी जिम्मेदारी निजी विद्यालयों पर कैसे थोप सकती है। निजी विद्यालयों को प्रवेश में आरक्षण को लेकर भी आपत्ति है जिसके अनुसार 25% का आरक्षण लागू किया जा रहा है जबकि इस विषय में सुप्रीम कोर्ट के 11 न्यायाधीशों की पीठ कह चुकी है कि गैर-सहायताप्राप्त निजी विद्यालयों व अल्पसँख्यक शिक्षण संस्थाओं को अपने मन से प्रवेश लेने का अधिकार है। सरकार गैर-सहायता प्राप्त निजी स्कूलों में आरक्षण लागू नहीं कर सकती।

अंतत: यह कहा जा सकता है कि आज शिक्षा के त्वरित तथा दूरगामी प्रभावों की व्यापकता का लगातार अध्ययन तथा पर्यवेक्षण करने की आवश्यकता है। निश्चित रूप से यह तय करना सरकार का काम है कि देशभर के निरक्षर लोगों की तादाद में और बढ़ोत्तरी न हो। यह समझना किसी भी बुद्धिजीवी के लिए दु:श्कर प्रतीत नहीं होता कि देश और समाज में वास्तविक बदलाव मात्र विधेयक बनाने से नहीं लाये जा सकते बल्कि इसके लिए सार्थक क्रियान्वयन का होना प्रथम अनिवार्यता है। इस विधेयक के लिए सबसे बड़ी चुनौती जनसामान्य में शिक्षा के प्रति समझ पैदा करने की है। साथ ही इस समझ को साकार कर पाने की उनमें ललक भी होनी चाहिए। जनसामान्य को यह समझाना होगा कि उनके शिक्षा के बुनियादी अधिकार के तहत यदि उन्हें किसी भी स्कूल में दाखिला लेकर पढ़ने का हक है तो उन्हें स्कूल के दायरे में पहुँचाकर उनकी पढ़ाई सुनिश्चित करना सरकार की जिम्मेदारी है।

आवश्यकता इस बात की भी है कि शिक्षा में पैर पसारती पूँजीवादी प्रवृत्ति को छोड़कर समाज के संभ्रांत और समद्ध लोग शिक्षा संस्थाओं को गोद लें और बालक व विद्यालय के विकास में अपना योग प्रदान करें। क्योंकि शिक्षा किसी भी समाज की सबसे बड़ी सेवा है, उद्योग अथवा व्यवसाय की तरह कमाई का साधन नहीं। सरकारी मशीनरी का ढुलमुल और अर्थलोलुप रवैया भी किसी भी नीति, अभियान या विधेयक को निष्फल बनाने में अग्रणी भूमिका निभाता है। सरकारी कोष से निकली राशि बंदरबाँट की प्रक्रिया से सकुशल निकलकर यदि विद्यालय और बालक तक पहुँच सकी तो यह अपने आप में एक सुखद आश्चर्य होगा। आवश्यकता इस बात की भी है कि जनसामान्य भी अपनी मनोवृत्ति में वांछित सुधार कर इस पुनीत लक्ष्य को प्राप्त करने में यदि देश और समाज के साथ कदम से कदम मिलाकर कर चल सके। अनिवार्य एवं नि:शुल्क शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में यह सुनिश्चित करना कि यह अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सके, न सिर्फ केंद्र सरकार, राज्य सरकार और समाज के संभ्रांत वर्ग का काम है बल्कि जनसाधारण को भी महती भूमिका का निर्वाह करना होगा, क्योंकि वास्तव में मेधा और मुनाफा के मध्य संतुलन स्थापित करना कोई कठिन कार्य नहीं है, बल्कि इसके लिए देश और समाज के प्रत्येक वर्ग एवं इकाई को दृढ़ संकल्प और इच्छाशक्ति की अत्यन्त आवश्यकता है। शिक्षा का अधिकार वास्तविक रूप में वर्तमान भारत की आवश्यकता है। अनेकों चुनौतियों के बावजूद यह प्रयास शिक्षित भारत का सपना साकार करने का हौसला प्रदान करता है बशर्ते कि इस अधिकार का प्रयोग महज कागजी खानापूर्ति तक सीमित न रह कर सम्पूर्ण भारत को ज्ञानवान बनाने के माध्यम के रूप में स्वीकार किया जाए।